International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(6): 166-170

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(6): 166-170
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-10-2023
Accepted: 26-11-2023

Dr. Prabhu Kumar
Assistant Professor, BRDBDPG College, Barhaj Deoria, Uttar Pradesh, India

Corresponding Author:
Dr. Prabhu Kumar
Assistant Professor, BRDBDPG College, Barhaj Deoria, Uttar Pradesh, India

वेदान्तसार में वर्णित अनुबन्ध चतुष्ट्य का एक: विवेचनात्मक अध्ययन

Dr. Prabhu Kumar

प्रस्तावना

किसी भी शास्त्र में प्रवेश से पहले उसके विषय में अच्छी तरह से जानना चाहिए। ग्रन्थ के विषय प्रयोजन आदि के निरूपण के लिए ग्रन्थ के प्रारम्भ में अनुबन्ध चतुष्टय का निरूपण किया जाता है। अनुबन्धों से यह ज्ञान होता है यह शास्त्र किस पाठक के लिए उपयुक्त है अर्थात् इस शास्त्र को पढ़ने के लिए कौन सा पाठक योग्य है? शास्त्र का विषय क्या है? शास्त्र के साथ विषय का कौन सा सम्बन्ध है? इस शास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ है?

वेदान्तसार में अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन ये चार अनुबन्ध बतलाए गए हैं, इन्हें ही "अनुबन्ध चतुष्टय" कहा जाता है।

जो अपने ज्ञान से अन्य को बांध कर ग्रन्थ अथवा शास्त्र में प्रवृत्त करते हैं उन्हें अनुबन्ध कहते हैं। [1] अत एव अनुबन्धों के ज्ञान के बाद ही किसी शास्त्र में पुरूष की प्रवृत्ति सम्भव है। इसीलिए कुमारिलभट्ट ने श्लोकवार्तिक में कहा है- श्रोता, ज्ञाता, अर्थ, सम्बन्ध का ज्ञान करके ही शास्त्र में प्रवृत्त होता है। [2] अतः शास्त्र के प्रारम्भ में सम्बन्धादि का उल्लेख अवश्य ही करना चाहिए।

आस्तिक दर्शन छः हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा । उत्तरमीमांसा दर्शन ही वेदान्त कहा जाता है। अब यह समझना चाहिए कि किसी भी शास्त्र के जो अनुबन्ध होते हैं, उस शास्त्र के प्रकरण ग्रन्थों के भी वो ही अनुबन्ध होते हैं। [3]

अनुबन्ध चतुष्टय

अधिकारी

वेदान्तसार में अधिकारी को साधन चतुष्टय सम्पन्न प्रमाता कहा गया है[4] तथा अधिकारी के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि –

'अधिकारी तु विधिवद्धीतवेदवेदाङ्गत्वेन अपाततः अधिगताखिलवेदार्थः अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरः सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मल- स्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता ।"

श्री रामतीर्थयति जी द्वारा विरचित विद्वन्मनोरञ्जनीकार के मत में जो पुरूष ज्ञान होने के साथ-साथ लौकिक तथा वैदिक कर्मों का सविधि सम्पादन करता है वह प्रमाता है।[5] मनुसंहिता में कहा गया है कि साधक विद्यया के द्वारा अमृत तत्त्व को प्राप्त हो जाता है ।[6] यह स्मृति वाक्य यहाँ प्रमाण है। तैत्तिरीयोपनिषद् के भाष्य में भगत्पाद शंकराचार्य जी ने कहा है कि तप के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करता है।[7]

काम्य कर्म-

त्यज्य कर्म दो प्रकार का है- काम्य कर्म तथा निषिद्ध कर्म। इनमे फल की आकांक्षा से जो कर्म किए जाते हैं, वे कर्म काम्य कर्म कहलाते हैं।[8] जैसे स्वर्ग प्राप्ति के कामना से किए गए ज्योतिष्टोम यज्ञादि। ज्योतिष्टोम याग काम्य कर्म है।

निषिद्ध कर्म-

ब्राह्मण हनन इत्यादि अनिष्ट रूप नरक के साधन रूप निषिद्ध कर्म है। वेदों में जिन कर्मों का निषेध है वे निषिद्ध कर्म हैं। ये कर्म अनिष्ट नरकादि के साधक हैं। जैसे- "ब्राह्मणों न हन्तव्यः "

नित्य कर्म-

अर्थात् जिन कर्मों के आचरण से अत्यधिक पुण्य तो नहीं मिलता है पर न करने से पाप होता है ऐसे कर्म नित्यकर्म है।[9] जैसे- संध्या वंदन आदि । श्रुति में कहा है कि **'अहरहः सन्ध्यानुपासीत"** इति। मनुसंहिता में भी कहा है-

"अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसजन् च इन्द्रियार्थेषु नरः यतनमृच्छति ।।[10]

सर्वसिद्धान्तसंग्रह में कहा गया है कि-

"मोक्षार्थी न प्रवर्तित तत्र काम्यनिषिद्धकर्मणोः ।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायनिहागया । इति[11]

नैमित्तिक कर्म-

'नैमित्तिकालि त्रजन्माधनुबन्धीनि जातेष्ययादीनि ।

प्रायश्चित कर्म-

"प्रायश्चितानि पापक्षय साधनानि चान्द्रायणादीनि ।

उपासना-

सगुण ब्रह्म विषयक मानस व्यापार रूपी शाण्डिल्य विद्या आदि उपासना है

इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना रूप गौण फल तो पितृलोक प्राप्ति तथा सत्य लोक की प्राप्ति है। यहाँ प्रमाण यह श्रुतिवचन है- "कर्मणा पितृलोकः विद्यया देवलोकः । "

इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना आदि द्वारा परिशुद्ध मन साधन चतुष्टय के सम्पादन में समर्थ होता है। अतः नित्यादि कर्मों से जिस पुरुष का चित्त निर्मल होता है वह साधन चतुष्टय के सम्पादन में खुद को लगाता है।

साधन चतुष्टय क्या है इस विषय में वेदान्तसारप्रणेता कहते हैं-

नित्यानित्यवस्तुविवेक इहामुत्रलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं।[12] अब इनके विवरण क्रमशः देखते हैं-

नित्यानित्य वस्तुविवेक

वेदान्तसारकार के मत में "नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावत्

ब्रह्मैत नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यामिति विवेचनम् " इति । ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अलावा ये सम्पूर्ण आकाशादि प्रपञ्च् अनित्य वस्तु है। ब्रह्म नित्य वस्तु है यहाँ प्रमाण- "अजो नित्यः शाश्वतः " [13] "सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म" [14] इत्यादि श्रुतिवाक्य हैं।

ब्रह्म से भिन्न सभी के अनित्यत्व के विषय में "नेह नानास्ति किञ्चन" (4/4/19), "अथ यदलयं तन्मर्त्यम्" [15] इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणभूत है। नित्य तथा अनित्य वस्तुओं को अलग-अलग करना ही नित्यानितयवस्तुविवेक है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः ॥" इति । [16]

"ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" अर्थात् ब्रह्म सत्य है तथा संसार मिथ्या है इस प्रकार का निश्चय ही नित्यानितयवस्तुविवेक कहा गया है।

जब नित्यअनित्यवस्तुओं का ज्ञान हो जाए तभी दूसरे साधन में (इहामुत्रफलभोगविराग में) यत्न करना चाहिए।

इहामुत्रफलभोगविराग-

इह अर्थात् इस लोक में तथा अमुत्र स्वर्गलोक में कर्मजन्य जो फल प्राप्त होते हैं उनके भोग से विरक्ति अर्थात् आसक्ति का अभाव ही 'इहामुत्रफलभोगविराग है। वेदान्तसार में कहा गया है-

"ऐहिकानां सक्चन्दनवनितादिविषयाभोगानाम् अनितयत्वतत् आमुष्मिकाणाम् अपि अमृतादिविषयभोगानाम् अनितयतया तेभ्यो विरतिः इहामुत्रफलभोगविराग" इति ।

विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

" तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः ।
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि ॥" (21)

शमादिषट्कसम्पत्ति-

अधिकारी जब द्वितीय साधन से सम्पन्न हो जाता है तब तीसरे साधन का मार्ग खुल जाता है। तृतीय साधन है- शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा की प्राप्ति ।

शम- "शमस्तावत् श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यः मनसः निग्रहः "

दम- "दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्" यह वेदान्तसार में कहा गया है। बाह्य इन्द्रियों अर्थात् चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा इन ज्ञानेन्द्रियों का उनके विषयों से आकर्षण दम है। वस्तुतः बाह्येन्द्रियों का निग्रह ही दम कहलाता है।

उपरति- वेदान्तसार में उपरति के दो लक्षण कहे हैं- "निवर्तितानाम् एतेषा तद्व्चतिरिक्तविषयेभ्यः उपरमणम् उपरति" अथवा "विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः ' इति ।

अतः निग्रह की गई बाह्येन्द्रियों तथा मन का अनेक विषयों से बार-बार दोष दिखाकर निवृत्ति कराना ही उपरति है।

तितिक्षा-

इसके बारे मे कहा गया है सर्दी गर्मी आदि विपरीत विषयों तथा उनसे उत्पन्न सुख तथा दुख को सहन करना। [17] विवेकचूड़ामणि में कहा है-

"सहनं सर्वसुखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगयते ॥" इति ।

सभी प्रकार के दुःखों को चिन्ता तथा विलय से रहित होकर प्रतिकार न करते हुए सहन करना ही तितिक्षा कहलाता है।

समाधान-

"निगृहीतस्य मनसः श्रवणादो तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानाम्" अर्थात् विषयों से दूर हो चुके चित्त का आत्मा विषयक श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन में तथा तदनुगुण गुरूसेवा आदि में लगाना ही समाधान है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

"सम्यगास्थापनं बुद्धेः शुद्धेः ब्रह्माणि सर्वथा ।"
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य त्वालनम् ॥" इति ।

श्रद्धा- केवल श्रवणादियों द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता है। श्रवणादि श्रद्धापूर्वक ही करना चाहिए। श्रद्धा क्या है इस विषय में कहा है कि- गुरू के वचनों तथा गुरू द्वारा उपदिष्ट शास्त्रवचनों में दृढ़ विश्वास ही श्रद्धा है। [18]

मुमुक्षुत्व-

मुमुक्षुत्व का अर्थ है मोक्ष में इच्छा । विवेकचूड़ामणि में शंकराचार्य जी ने कहा है-

अर्थात् अहंकार से लेकर स्थूल देह तक अज्ञान से उत्पन्न बन्धसमूहों के स्वरूप को जानकर आत्मज्ञान द्वारा मुक्त होने की इच्छा ही मुमुक्षुता है [19]

इस प्रकार साधन चतुष्टय का निरूपण किया।

इस प्रकार सभी गुणों से युक्त प्रमाता वेदान्त विद्या का अधिकारी होता है। यहाँ श्रुति का प्रमाण भी मिलता है- "शान्तो दान्त उपरतिस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽत्मन्येवात्मानं पश्यति " इति। उपदेशसहस्री का यह वाक्य इस श्रुति का समर्थन करता है [20].

इस प्रकार अधिकारी के स्वरूप का निरूपण करके अब विषय का प्रतिपादन करते हैं-

विषय

वेदान्त शास्त्र में विषय का निरूपण करते समय वेदान्तसार में कहा है- "जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम्, तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्" इति। यह वेदान्त शास्त्र जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करता है। ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि- "तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्" इति। अर्थात् सभी वेदान्त वाक्य उपनिषदों के वाक्य 'अयमात्मा ब्रह्म", "तत्त्वमसि ", " अहं ब्रह्मास्मि", "प्रज्ञानं ब्रह्म" इत्यादि वाक्य जीव और ब्रह्म के ऐक्य का ही प्रतिपादन करते हैं। आत्मोपनिषद् में कहा गया है।

"घटे नष्ट यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ।
तथोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित् स्वयम् ॥" इति (1 / 22)

अर्थात् घट के नाश हो जाने पर घटाकाश स्वयमेव महाकाश बन जाता है, उसी प्रकार अज्ञान के नाश हो जाने पर ब्रह्मवित् जीवात्मा स्वयं पर ब्रह्म बन जाता है। वस्तुत: जीव और ब्रह्म पृथक-पृथक नहीं है।

सम्बन्ध

अधिकारी का और विषय का प्रतिपादन करके अब तृतीय सम्बन्ध का प्रतिपादन करते हैं- " सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः" इति। अर्थात् जीव तथा ब्रह्म का अभेद, जीव और ब्रह्म के ऐक्य प्रमेय का, ऐक्य ज्ञेय का, तत्प्रतिपादक उपनिषत्प्रमाण का तथा बोध्यबोधकभाव सम्बन्ध है।

प्रयोजनम्

अन्तिम अनुबन्ध प्रयोजन है। "प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।" अर्थात् प्रयोजन को जाने बिना मन्दबुद्धि व्यक्ति भी किसी भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है, तो बुद्धिमानों के विषय में क्या कहें, वो तो अवश्य ही प्रवृत्त नहीं होते हैं। कुमारिल भट्ट ने भी कहा है-

"सर्वस्यैव तु शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते ॥" इति ।

वेदान्त शास्त्र का क्या प्रयोजन है यहाँ कहते हैं-

"प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च ।" इति।

निष्कर्ष

शास्त्र के ज्ञान से पहले शास्त्र विषयक अनुबन्धों का ज्ञान आवश्यक है। अनुबन्धचतुष्टय में प्रमाता ही अधिकारी होता है। प्रमाता वेदों का क्रम से अर्थ को जाने। त्याज्य कर्मों का त्याग करे। नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों का आचरण करें।

उससे मन शुद्ध होता है। मन के शुद्ध होने से साधनचतुष्टय के सम्पादन का अवकाश प्राप्त होता है। पहले नित्य तथा अनित्य वस्तुओं का विवेक करना चाहिए। उससे वैराग्य उत्पन्न होता है। उससे शमादि में रूचि बढ़ती है। उससे मोक्ष विषयक इच्छा होती है। जिसकी मोक्ष विषयक इच्छा है वही वेदान्त में अधिकारी है।

विषय तो जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करता है। यहाँ नीर क्षीरवत् गोण ऐक्य नहीं कहा गया है, अपितु घटाकाश महाकाश के समान मुख्य ऐक्य बताया गया है।

सम्बन्ध बोध्यबोधक भावरूप है। यहाँ बोध्य ब्रह्म है, शास्त्र अथवा ग्रन्थ बोधक है। प्रयोजन तो जीव तथा ब्रह्म के ऐक्यगत ज्ञान की निवृत्ति तथा स्वरूपानन्द की प्राप्ति है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से हमारे जीव तथा ब्रह्म के विषय में भ्रम है उसका नाश होता है।

जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य अनुभूत होता है, उसके स्वस्वरूपानन्द ज्ञान से आनन्द प्राप्त होता है।

इस प्रकार इसमें वेदान्तसार ग्रन्थ के अनुसार वेदान्त के अनुबन्धचतुष्टय का विवरण प्रस्तुत किया।

सन्दर्भ

1. अनु स्वज्ञानात् अनन्तर बध्नन्ति शास्त्रे ग्रन्थे वा आसज्जन्ति प्रवर्तयन्ति ये ते अनुबन्धा"
2. "ज्ञातार्थ ज्ञातसम्बन्धं श्रोतु श्रोता प्रवर्तते । ग्रन्थादौ तेन वक्तव्य सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥ " इति (1/1/17)
3. "शास्त्रैकदेशसम्बन्धं शास्त्रकार्यन्तरे स्थितम् । आहुः प्रकरण नाम ग्रन्थभेऽ विपश्चितः ॥"इति (पराशर उपपुराण 1.3/21-22)
4. साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता ।
5. "लौकिकवैदिकव्यवहारेषु अश्रान्तः जीवः एव प्रमाता" इति।
6. "तपसा कल्मषं हन्ति, विद्ययामृतमृनुते" (12/104) मनुसंहिता ।
7. "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" (तै. उ. 3/2/1) इति ।"
8. "फलोद्देश्येन क्रियमागनि कर्माणि काम्यानि" (विद्वन्मनोरञ्जनी)
9. "नित्यानि अकरणे प्रत्यवाससाधनानि"
10. मनुसंहिता (11/44) इति
11. सर्वसिद्धान्तसंग्रह (11 / 34, 35)
12. "साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेक - इहामुत्रफलभोगविराग- शमादिषटक-सम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि" इति । वेदान्तसार
13. (कठोपनिषद्) 1/2/18)
14. (तैत्तिरीये 2 / 1)
15. (छान्दोगये 7/2/4/9)
16. "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येत्वरूपो विनिश्चयः ।
17. " तितिक्षा शीतोष्णादि द्वन्द्वसहिष्णुता" वेदान्तसार
18. "गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा" इति।
19. "अहंकारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञानकल्पितान् । स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता ।" इति ।
20. "प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे । गुणन्विताय अनुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षवे॥" (324,16/12) वेदान्तसार